मुक्त व्यापार समझौतों (FTA) की हड़बड़ी: दक्षिण एशिया के आर्थिक जुए के पीछे छिपी क़ीमत

चित्र: दिल्ली किसान जुलूस, 18 मार्च 2013: जो अथियली (Joe Athialy/Rewa Images)

जैसे-जैसे क़र्ज़ का दबाव बढ़ रहा है, दक्षिण एशिया के देशों* की आर्थिक रणनीतियों की मुक्त व्यापार समझौतों या फ्री ट्रेड एग्रीमेन्ट्स (एफ.टी.ए.) के इर्द-गिर्द तेज़ी से घूमने की रफ़्तार बढ़ती जा रही हैं। यह हड़बड़ी केवल इस क्षेत्र के व्यापार के बने हुए तौर-तरीक़ों को ही नहीं, बल्कि व्यापक तौर पर इस क्षेत्र के देशों के क़ानूनी ढाँचों को, श्रम क़ानूनों और श्रमिकों के अधिकारों से लेकर कृषि नीतियों तक को नये साँचे में ढाल रहा है।

पिछले दो वर्षों से श्रीलंका और बांग्लादेश अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) से अपनी आर्थिक बदहाली की परिस्थितियों के चलते क़र्ज़ में रियायत यानि बेलआउट की माँग कर रहे हैं। यदि श्रीलंका को क़र्ज़ में राहत चाहिए तो श्रीलंका सरकार से अपेक्षा की जा रही है कि वो अनेक तथाकथित आर्थिक सुधार लागू करे जिसमें व्यापार का उदारीकरण, श्रम बाज़ार में लचीलापन आदि क़दम उठाना शामिल हैं। यह क़दम फ़ौरी तौर पर

* दक्षिण एशिया के देश - भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, अफ़ग़ानिस्तान एवं मालदीव।

बेशक अर्थव्यवस्था में थोड़ी स्थिरता ला सकते हैं लेकिन इससे श्रमिकों के हितों पर एवं देशी व्यापार पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इसी तरह आई.एम.एफ. ने पाकिस्तान की सरकार को कहा है कि वो बाज़ार तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करने के लिए बड़े-बड़े व्यापारिक भागीदारों के साथ मुक्त व्यापार समझौते (एफ.टी.ए.) करे। तीन अरब अमेरिकी डॉलर की दीर्घकालीन क़र्ज़ राहत (बेलआउट) योजना की शर्त के तौर पर पाकिस्तान से कहा गया है कि वो अपने आयात शुल्क में भी कमी लाए। क्षेत्र के अन्य देशों, जैसे अफ़ग़ानिस्तान और मालदीव को भी शायद इसी चक्रवात से गुज़रना पड़े क्योंकि वे भी या तो क़र्ज़ की भीषण समस्या में उलझे हुए हैं या फिर जल्द ही इस ख़तरे से उनका सामना होने वाला है।

मुक्त व्यापार का विरोध करने वाले अनेक आंदोलनकारियों के लिए यह जो आर्थिक हलचल चल रही है, उससे नॉर्थ अमेरिका फ्री ट्रेड एग्रीमेंट (नाफ्टा) और उसके प्रभावों के ख़िलाफ़ हुए संघर्ष की याद आती है। कनाडा, मेक्सिको और अमेरिका के बीच सन 1994 में हुए इस नाफ्टा समझौते ने मेक्सिको के लोगों पर बहुत विनाशकारी असर डाले थे। इस समझौते से मेक्सिको को अपने आयात सस्ते करने पड़े जिससे बाहरी सामान सस्ते होकर देश में भर गए और खाद्य संप्रभुता गहरे संकट में पड़ गई थी। बीजों का ज़बर्दस्त तेज़ी से निजीकरण हुआ, लोग ज़मीन से बेदख़ल हुए, और उनकी आजीविका भी उनके हाथ से चली गई। इससे अपराध भी बहुत बढ़े, रोज़गार की तलाश में लोगों का बड़े पैमाने पर पलायन हुआ और अनियोजित गतिविधियों से प्रदूषण बढ़ा, साथ ही मज़दूरों के अधिकारों को हाशिये पर धकेल दिया गया। दक्षिण एशिया के देशों को नाफ्टा की काली यादों को इसलिए याद करना चाहिए ताकि उन्हें यह समझ आ सके कि मुक्त व्यापार समझौते यानि एफटीए सिर्फ़ शुल्क में कमी का मामला नहीं, बल्कि उससे कहीं ज़्यादा गहरे असर डालने वाला समझौता है। एफटीए समझौते कॉर्पोरेट संस्थानों को फ़ायदा पहुँचाने के लिए कानूनों और नियमों को बदल डालते हैं।

आयातों में ठहराव

दक्षिण एशिया में मुक्त व्यापार समझौते क़रीब दो दशकों से किये जा रहे हैं और उनके असरात का आकलन करने के लिए इतना वक़्त काफ़ी है। अर्थव्यवस्था के तमाम हिस्सों में भारी तबाही और नुक़सान दर्ज हुए हैं। भारत और पाकिस्तान में यह नुक़सान इस हद तक हुए हैं कि दोनों ही देशों के उद्योगों के महासंघों ने अपनी सरकारों से नयी व्यापारिक संधियों पर पूरी तरह रोक लगाने की माँग तक कर डाली थी।

एफटीए समझौतों ने भारत के खाद्य क्षेत्र का जो हाल किया है, वो ख़ासतौर पर डराने वाला है। देश की खाद्य उत्पादन क्षमता पर काफ़ी प्रतिकूल असर पड़ा है। उन्नीस सौ नब्बे के दशक की शुरुआत में भारत खाद्य तेल उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर था। लेकिन मलेशिया और आसियान (एसोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशन्स) देशों के साथ एफटीए पर हस्ताक्षर करने के बाद भारत अब दुनिया में खाद्य तेल का सबसे बड़ा आयातक देश बन गया है।

भारत और आसियान देशों के बीच जब से इन चर्चाओं की शुरुआत हुई थी, तब से ही भारत के दक्षिणी राज्यों, विशेषतया केरल की सरकार ने अपनी चिंताएँ व्यक्त की थी। उन एफटीए समझौतों में आसियान देशों से भारत को कुछ कृषि उत्पादों, मसलन कॉफ़ी, नारियल तेल, पाम (ताड़) का तेल, रबर, मसाले, काली मिर्च और अन्य वृक्षाधारित (प्लांटेशन) फसलें आयात होनी थीं। यह सभी वही समान कृषि उत्पाद हैं जो केरल में भी उपजाये जाते हैं।

भारत और आसियान देशों के बीच हुए एफटीए समझौते में से नारियल तेल को बाहर रखा गया था, इसके बावजूद इस समझौते का भारत के नारियल तेल उत्पादन पर बहुत बुरा असर पड़ा। कोकोनट बोर्ड ऑफ इंडिया के मुताबिक वर्ष 2011-12 में भारत में 3014.21 टन से ज़्यादा नारियल तेल का आयात हुआ था, जो 2014-15 में केवल तीन वर्षों के भीतर चार गुने से भी ज़्यादा बढ़कर 12811.92 टन जा पहुँचा। नारियल तेल की अंतरराष्ट्रीय खुले बाज़ार में भी क़ीमत काफी घटी। अगस्त 2014 में भारत का नारियल तेल 2.01 अमेरिकी डॉलर की क़ीमत पर बिकता था जो भाव जुलाई 2015 में कम होकर 1.2 अमेरिकी डॉलर हो गया। हालात इतने ख़राब हुए कि केरल के तत्कालीन कृषि मंत्री के पी मोहनन ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर चेताया कि नारियल तेल का आयात तुरंत रोका जाए वर्ना केरल के नारियल किसान और नारियल की फ़सल से जुड़े हुए विभिन्न उद्योग बर्बाद हो जाएँगे जो केरल की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माने जाते हैं। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए तत्काल कुछ क़दम उठाये गए और वर्ष 2015-16 में आयात घटकर 5416.30 टन रह गया, लेकिन फिर पाम तेल का बहुत ज़्यादा आयात किया गया तो उससे फिर नारियल तेल की खपत प्रतिकूल तरह से प्रभावित हुई। पिछले पाँच-छः वर्षों में खोपरे (सूखे नारियल) का भाव 216.5 अमेरिकी डॉलर प्रति क्विंटल से घटकर 84.22 अमेरिकी डॉलर प्रति क्विंटल रह गया। मजबूर होकर नारियल किसानों ने 300.7 अमेरिकी डॉलर प्रति क्विंटल समर्थन मूल्य की भारत सरकार से माँग की जो अभी तक नहीं मानी गई है। यही हाल रबर के क्षेत्र में हुआ। वर्ष 2013 से 2015 के दौरान रबर का आयात लगभग दोगुना हो गया था और भारत की रबर का निर्यात रिकॉर्ड स्तर तक नीचे गिर रहा था। बाज़ार में माँग न होने से केरल में रबर का उत्पादन 10 लाख टन वार्षिक से घटकर छः से सात लाख टन के बीच रह गया। इस एफटीए समझौते के पहले तक केरल के रबर किसानों को रबर का भाव तीन अमेरिकी डॉलर प्रति किलो मिलता था जो भारत-आसियान एफटीए के बाद 1.30 अमेरिकी डॉलर प्रति किलो रह गया।

लेकिन किसानों की समस्याओं को बढ़ाने के लिए जैसे भारत-आसियान एफटीए समझौता ही पर्याप्त नहीं था। भारत-श्रीलंका एफटीए समझौते ने भी भारत के किसानों को, विशेषतया काली मिर्च के उत्पादकों को तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत में काली मिर्च का फार्मगेट मूल्य (बाज़ार मूल्य में से विपणन ख़र्च घटाने के बाद किसान को मिलने वाला मूल्य फार्मगेट मूल्य होता है) 2017 में 9.14 अमेरिकी डॉलर प्रति किलो था जो जुलाई 2018 में 3.61 अमेरिकी डॉलर प्रति किलो रह गया। क़ीमत में इस तीव्र गिरावट की वजह वियतनाम की

काली मिर्च का श्रीलंका के रास्ते भारी मात्रा में आयात किया जाना था। भारत-श्रीलंका एफटीए समझौते के तहत भारत श्रीलंका से बिना किसी आयात शुल्क के 2500 टन काली मिर्च प्रति वर्ष ख़रीद सकता है। इस कोटे से ज़्यादा ख़रीदने पर उसे आठ प्रतिशत का कर (टैक्स) देना होगा। जबकि भारत-आसियान एफटीए के तहत भारत अगर सीधे वियतनाम से काली मिर्च ख़रीदेगा तो उसे 52 प्रतिशत शुल्क का भुगतान करना होगा। अभी हाल ही में जाकर फ़रवरी 2024 में भारत की एक संसदीय समिति ने आसियान देशों से जो काली मिर्च श्रीलंका के रास्ते भारत के बाज़ार में धड़ल्ले से आती जा रही थी, उस पर रोक लगाने के कुछ क़दम सुझाये हैं।

हालाँकि भारत-श्रीलंका एफटीए समझौता बेशक दक्षिण-दक्षिण व्यापार (साउथ-साउथ ट्रेड) का हिस्सा था लेकिन इसका श्रीलंका के कृषि उत्पादों के लिए भी कोई विशेष लाभ नहीं होने वाला था। इस समझौते में भारत एक ताक़तवर हिस्सेदार है तो उसने भी श्रीलंका को अपने निर्यात काफ़ी बढ़ा दिये। नतीजा यह हुआ कि सन 2000 में जब यह समझौता हुआ था, तब से 2014 तक श्रीलंका के व्यापार घाटे में छः गुना वृद्धि हुई। इस बीच श्रीलंका से भारत को होने वाले निर्यात काफ़ी धीमी गति से बढ़े। बड़ी हद तक इसकी वजह यह थी कि श्रीलंका के निर्यातकों को भारत के बाज़ार में प्रवेश करने के लिए ग़ैर टैरिफ उपाय (नॉन टैरिफ मेजर्स)[1] का सामना करना पड़ा जैसे अनेक तरह के कर, मानक और प्रशासनिक प्रक्रियाएँ और समझौते के बाहर आने वाले अनेक क़िस्म के कोटा के लिए अलग शुल्क आदि।

और क्या मसले हैं सामने?

इन नये एफटीए समझौतों के दौर में शुल्क (टैरिफ) में कमी आना या राजस्व में घाटा होना दरअसल तैरते हिमखंड का ऊपर-ऊपर दिखने वाला एक छोटा-सा हिस्सा भर है। उससे कहीं ज़्यादा ख़तरे इसमें अदृश्य हैं और छिपे हुए हैं। आज के व्यापारिक समझौते केवल आयात-निर्यात के नियमों तक नहीं रुकते बल्कि वे निवेशकों को और कॉर्पोरेट क्षेत्र को मुनाफ़ा पहुँचाने के लिए उन्हें नियम-क़ानून पार कर क़ानूनी ढाँचों तक को बदल डालते हैं।

कृषि सब्सिडी पर कोई समझौता होना नामुमकिन : योरपीय यूनियन के साथ भारत के एफटीए समझौते पर जारी वार्ताओं में समझौते में शामिल कृषि उत्पादों में से 90 फ़ीसदी उत्पादों पर कस्टम या आयात शुल्क को शून्य या लगभग शून्य करने की आशंका है। फ़िलहाल भारत में यह शुल्क 39.2 प्रतिशत है और योरपीय यूनियन में 11.2 प्रतिशत है। ऐसा इसलिए किया जा सकता है क्योंकि योरपीय यूनियन भारत के कृषि और डेयरी बाजार में अपनी मज़बूत पकड़ बनाना चाहता है। लेकिन योरपीय यूनियन उन भारी-भरकम सबसिडियों को कम या ख़त्म नहीं करेगा जो वो अपने देशों में कृषि क्षेत्र में देता है। वर्ष 2020-21 में कृषि को दी जाने वाली योरपीय यूनियन की सब्सिडी लगभग 7,84,540 लाख अमेरिकी डॉलर थी। इतनी ज़्यादा सब्सिडी के कारण योरपीय यूनियन अपने

[1] Non-Tariff Measures या NTM वो नीतिगत उपाय होते हैं जो कस्टम शुल्क या टैरिफ कोटा से अलग होते हैं और जिनके इस्तेमाल से अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आयात और निर्यात रोके या नियंत्रित किये जा सकते हैं।

कृषि उत्पादों की क़ीमत भारतीय कृषि उत्पादों की तुलना में काफ़ी कम रख सकता है जिसका उसे ज़बर्दस्त लाभ हासिल होगा और साथ ही भारतीय बाज़ारों को अपने सब्सिडी वाले उत्पादों से पाटने का अधिकार भी मिल जाएगा। भारत के किसान योरपीय यूनियन के किसानों के सामने टिक नहीं पाएँगे। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में फिर भी सब्सिडी को लेकर बहस की जा सकती है और सब्सिडी को कम या ज़्यादा किया जा सकता है, लेकिन एफटीए समझौतों में विकसित देशों द्वारा कृषि पर दी जाने वाली सब्सिडी पर सवाल नहीं उठाया जा सकता और न ही उसे बदला जा सकता है।

ग़ैर टैरिफ उपाय (नॉन-टैरिफ बैरियर्स या एनटीबीज़) : योरपीय यूनियन जैसे विकसित देश ऐसी ग़ैर टैरिफ बाधाओं को सख़्ती से क़ायम रखते हैं जो उनके देश के खाद्य उद्योग द्वारा अपना मुनाफ़ा ध्यान में रखकर तय किये जाते हैं। जैसे कृषि उत्पादों की साफ़-सफ़ाई और पौधों पर कीटनाशक आदि के इस्तेमाल (phytosanitary) के मानक, खाद्य उत्पादक का पता लगा सकने की जानकारी और बाज़ार की निगरानी के तंत्र आदि ऐसे कारण हैं जिनके चलते दक्षिण एशिया के देशों के लिए योरपीय यूनियन के देशों के बाज़ार में अपनी पहुँच बढ़ाना मुश्किल होता है। ऊपर विकसित देशों द्वारा जिस भारी-भरकम सब्सिडी का ज़िक्र किया है, वह भी तीसरी दुनिया के कृषि उत्पादों के लिए एक तरह की ग़ैर-टैरिफ बाधा ही है।

निर्यात (export) पर कोई रोक नहीं : वक़्त-वक़्त पर दक्षिण एशिया के देश – भारत, बांग्लादेश, अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान चावल, गेहूँ, शकर जैसे खाद्य पदार्थों के निर्यात पर प्रतिबंध लगाते हैं ताकि खाद्यान्न की घरेलू आपूर्ति नियंत्रण में रहे तथा घरेलू खाद्य सुरक्षा भी क़ायम रहे। सन 2019 में पाकिस्तान ने गेहूँ और गेहूँ के आटे की लगातार बढ़ती क़ीमतों के मद्देनज़र गेहूँ और आटे के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया था। सन 2024 की शुरुआत में पाकिस्तान ने रमज़ान के महीने में प्याज और केले की क़ीमतों को क़ाबू में रखने के लिए इनके निर्यात पर भी प्रतिबंध लगा दिया था। सन 2022 में अफ़ग़ानिस्तान ने अपनी देश की ज़रूरतें पूरी करने के लिए गेहूँ के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया था। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अक्टूबर 2023 में बांग्लादेश ने चावल की सभी क़िस्मों, यहाँ तक कि ख़ुश्बूदार क़िस्मों का निर्यात भी अनिश्चितकाल के लिए रोक दिया। विकसित देश, विशेष तौर पर योरपीय यूनियन के देश और जापान, विकासशील देशों के साथ किये जाने वाले एफटीए समझौतों में निर्यातों पर इस तरह के सुरक्षात्मक क़दम (कर, प्रतिबंध और नियंत्रण) को पूरी तरह हटाने की माँग करते हैं।

डेयरी क्षेत्र के बाज़ार को खोलना : दक्षिण एशिया में, विशेष तौर पर भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में, जहाँ छोटे-छोटे डेयरी किसानों द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता है, डेयरी एक बहुत संवेदनशील क्षेत्र है। विकसित देशों के डेयरी उद्योगों की ओर से विकासशील देशों के डेयरी किसानों पर विस्थापन का बड़ा ख़तरा मंडरा रहा है। योरपीय यूनियन के देश, यूनाइटेड किंगडम, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड काफ़ी आक्रामक तरह से दक्षिण एशिया के डेयरी क्षेत्र में प्रवेश की कोशिशें कर रहे हैं। योरप के देशों की डेयरी कंपनियाँ भारत और पाकिस्तान के डेयरी क्षेत्र में पहले ही घुस चुकी हैं और वे चाहते हैं कि उनके डेयरी उत्पाद आयात शुल्क से मुक्त

हो जाएँ ताकि यहाँ के बाज़ारों में उनके डेयरी उत्पाद और सस्ते होकर ज़्यादा पहुँच बढ़ा सकें। यह न केवल दक्षिण एशियाई देशों के सैकड़ों और हज़ारों डेयरी कोऑपेरेटिव्स के लिए विनाशकारी होगा बल्कि इन कोऑपेरेटिव्स को ताज़ा दूध पहुँचाने वाले लाखों-करोड़ों छोटे डेयरी उत्पादक, जिनमें ज़्यादातर महिलाएँ हैं, तबाह हो जाएँगे। एफटीए समझौतों में होने वाला "राष्ट्रीय उपचार (नैशनल ट्रीटमेंट)" प्रावधान भी यह सुनिश्चित करेगा कि दक्षिण एशियाई देशों में निवेश करने वालीं विदेशी कम्पनियों को भी वही सारे अधिकार और विशेषाधिकार मिलें जो घरेलू डेयरी कम्पनियों को मिलते हैं। इसका सीधा नतीजा यह होगा कि दक्षिण एशियाई देशों की सरकारें अपने देश के डेयरी कोऑपेरेटिव्स और छोटे डेयरी किसानों के हक़ में या उनकी रक्षा के लिए कोई क़ानून भी नहीं बना सकेंगी। दूसरी ओर, डेयरी उद्योग संबंधी विकसित देशों के साफ़-सफ़ाई के अनिवार्य शर्तों और नियमों की वजह से और बाज़ार पर उनकी सख़्त निगरानी की वजह से दक्षिण एशिया के देशों के डेयरी उत्पाद विकसित देशों के बाज़ारों में अपनी पहुँच और पकड़ नहीं बना पाएँगे। विकसित देशों में एक नियम यह भी होता है कि मूल डेयरी उत्पादक का पता लगाया जा सके (traceability) ताकि गुणवत्ता में कोई कमी आने पर उसे दंडित किया जा सके। विकासशील देशों में मूल उत्पादक का पता लगाना और पता रखना बहुत मुश्किल है। एक तो गाँवों से सब किसान अपना दूध बड़े टैंकर में मिला देते हैं और दूसरा आर्थिक अनिश्चितताओं के कारण जो आज डेयरी का काम कर रहा है, वो पलायन करके कल कहीं और जा सकता है। विकसित देशों की यह शर्त भी विकासशील देशों के डेयरी उत्पाद उनके बाज़ारों तक नहीं पहुँचने देगी।

ट्रिप्स प्लस प्रावधान अर्थात यूपीओवी (UPOV) के माध्यम से बीजों पर एकाधिकार : बौद्धिक संपदा अधिकारों के बारे में योरपीय यूनियन के देश, जापान और कोरिया, पौधों की क़िस्मों के संरक्षण के लिए ट्रिप्स प्लस (TRIPS Plus) प्रावधानों की माँग कर रहे हैं। साथ ही वे चाहते हैं कि 'इंटरनेशनल कन्वेन्शन फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ न्यू वैराइटीज़ ऑफ प्लांट्स' (यूपीओवी) अर्थात पौधों की नयी क़िस्मों के संरक्षण के लिए अन्तरराष्ट्रीय क़ानून,1991 की शर्तों को समझौते में शामिल होना अनिवार्य किया जाए। यूपीओवी किसानों के अधिकारों को मान्यता नहीं देता और उन बीज कंपनियों के हितों की सुरक्षा करता है जो फ़सल अनुसंधान और विकास में संलग्न हैं। यूपीओवी 1991 बीजों को बचाने, आपस में बदलने और खेतों में उपजाये और बचाये हुए बीजों को पुनः इस्तेमाल करने के किसानों के पारंपरिक अधिकारों को बहुत हद तक सीमित करता है और मात्र 'किसानों के अधिकारों' की जगह सिर्फ़ 'बीजों का प्रजनन कर विकसित करने वाले (ब्रीडर) के अधिकार' की हिफ़ाज़त करता है। यूपीओवी 1991 दक्षिण एशिया के उन किसानों के लिए बर्बादी साबित होगा जो अपने खेती से बचाये हुए बीजों पर ही निर्भर होते हैं। बीज संरक्षण करने वाले हज़ारों किसानों के लिए भी यह तबाही होगी जो अगली पीढ़ियों के लिए कृषि में विविधता को बचाने के प्रयास में लगे हुए हैं। जो एफटीए समझौते अभी वार्ताओं के दौर में हैं, उनमें से भारत-योरपीय यूनियन एफटीए समझौते में और बांग्लादेश-जापान एफटीए समझौते में दक्षिण एशिया के देशों से यह माँग की गई है कि भारत और बांग्लादेश यूपीओवी 1991 को मानते हुए समझौता

करें। मिसाल के तौर पर भारत-योरपीय यूनियन एफटीए समझौते का अनुच्छेद X.38 कहता है कि 'समझौता करने वालीं दोनों पार्टियों को यूपीओवी 1991 के मुताबिक पौधों की क़िस्मों के संरक्षण के लिए कार्य करना पड़ेगा जो 19 मार्च 1991 को जिनेवा में संशोधित किया गया था।'

सरकारी या सार्वजनिक ख़रीद का उदारीकरण : एफटीए समझौतों में दक्षिण एशियाई देशों को विकसित देशों का यह दबाव भी झेलना होगा कि दक्षिण एशियाई देश अपने एफटीए भागीदारों के लिए सभी शासकीय भंडारण और शासकीय ख़रीद के क्षेत्र को भी खोल दें। भारत-संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) एफटीए के तहत भारत पहले ही शासकीय ख़रीद और भंडारण में यूएई का प्रवेश स्वीकार कर चुका है। योरपीय यूनियन, यूनाइटेड किंगडम और ऑस्ट्रेलिया जैसे विकसित देश एफटीए समझौतों में भागीदार देशों से यह माँग कर रहे हैं कि उन्हें शासकीय ख़रीद और भंडारण में भी जगह दी जाए। भारत - एफ्टा एफटीए (इसमें योरप के स्विट्ज़रलैंड, स्वीडन, नॉर्वे, आइसलैंड और लीचेन्सटाइन देश शामिल हैं) समझौते में शासकीय ख़रीद और भंडारण शामिल तो है लेकिन शासकीय ख़रीद और भंडारण के बाज़ार तक पहुँच देने के बारे में कोई वादा नहीं है। अगर बाज़ार तक पहुँच देनी है तो उसके बारे में बाद में फिर से बात और सौदा करना होगा। बांग्लादेश-जापान एफटीए अभी बातचीत के दौर में है और उसमें जापान ने ज़ोर दिया है कि चूँकि आर्थिक गतिविधियों का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व शासकीय ख़रीद और भंडारण होता है इसलिए इसे ज़रूर ही आर्थिक साझेदारी समझौतों (इकॉनॉमिक पार्ट्नरशिप एग्रीमेंट्स) में शामिल होना चाहिए। शासकीय ख़रीद और भंडारण को अगर एफटीए समझौतों के तहत खोल दिया गया तो यह लघु, छोटे और मझोले उद्योगों, ग्रामीण उद्यमों, महिलाओं के उद्यमों के हितों को और अस्तित्व को ही जोखिम में डाल देगा। उनके हित पूरी तरह समझौते की बलि चढ़ जाएँगे क्योंकि दक्षिण एशिया के देशों में जब सरकार कोई टेन्डर या काम निकालती है तो इन छोटे व्यवसायियों को प्राथमिकता दी जाती है। संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) के साथ हुए एफटीए समझौते में भारत ने कृषि उत्पादों और स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र के लिए की जाने वाली शासकीय ख़रीद और भंडारण को एफटीए का हिस्सा नहीं बनाया है।[2]

यह अच्छा है कि इस क्षेत्र में अब तक जितने एफटीए समझौतों पर हस्ताक्षर हुए हैं, उनमें से किसी में भी खाद्य पदार्थों या खाद्यान्न संबंधी शासकीय ख़रीद और भंडारण के प्रावधान नहीं हैं। इस क्षेत्र को अगर खोल दिया गया तो दक्षिण एशियाई देशों की खाद्य सुरक्षा ख़तरे में पड़ जाएगी जैसे सन 2006-07 में भारत ने गेहूँ और चावल के ख़रीद और भंडारण को खोल दिया था तो उस वर्ष बम्पर फ़सल होने के बाद भी गेहूँ का बड़ी मात्रा में आयात करना पड़ा था।

आनुवांशिक रूप से संशोधित जीएमओ बीजों और अन्य जीएमओ खाद्य वस्तुओं का प्रसार : अगर एफटीए समझौते में शामिल जोड़ीदार देश के जीएमओ को नियंत्रित करने वाले विनियमों और मानकों से व्यापार में बाधा

[2] हालाँकि अब संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) एफटीए समझौते पर पुनः वार्ता करके नयी शर्तें जोड़ना चाहता है जिसमें उसका साफ़ इरादा कृषि वस्तुओं को समझौते में शामिल करना है।

आ रही हो, तो एफटीए समझौते की मदद से जीएमओ बीजों और खाद्य पदार्थों को जोड़ीदार देश पर थोपा जाता हैं। एफटीए के अंतर्गत दक्षिण एशिया के देशों को जीएमओ बीजों और खाद्य पदार्थों के आयात को रोकने का प्रावधान अपनाना बहुत मुश्किल होगा। एफटीए समझौतों के अंतर्गत जीएमओ सम्बंधित विपणन मानकों का समन्वय (harmonization of regulatory measures) बनाने के प्रावधान होते हैं जिसका उद्देश्य होता है कि स्वास्थ्य, भोजन और जैवसुरक्षा के लिए जो प्रतिबंधात्मक नियम हैं, उन्हें कम से कम या ख़त्म कर दिया जाए, ताकि उन क्षेत्रों में भी व्यापार फल-फूल सके। जीएम खाद्य सामग्री को स्वीकृति देने की प्रक्रिया भी तेज़ की जाए जैसा प्रावधान अमेरिका-मेक्सिको-कनाडा के एफटीए समझौते में या फिर अमेरिका-चीन एफटीए में रखा गया है। इसका मक़सद यह सुनिश्चित करना है कि अगर एक देश यह कहता है कि कोई उत्पाद उसके देश के लिए सुरक्षित है तो बाक़ी दो देशों को भी अपने देशों के लिए उस उत्पाद को सुरक्षित मानना ही होगा। भारत-कनाडा एफटीए समझौता वार्ता के तहत अपने जीएमओ कनोला (राई, सरसों की तरह का बीज) को भारत में जल्द और पूरी तरह स्वीकृति दिलवाने के लिए कनाडा ने काफ़ी ज़ोर डाला। एफटीए समझौता करने वाले देश जीएमओ वस्तुओं की निम्नस्तरीय मौजूदगी के लिए भी मिलकर नियम बनाएँगे जिसमें एक देश की अधिकृत सक्षम नियामक संस्था (ऑथराइज्ड एजेंसी) द्वारा स्वीकृति दे दिये गए जीएमओ वस्तुओं को अपने आप एफटीए के दूसरे देश में भी अनुमति दे दी जाएगी।

इन्वेस्टर-स्टेट डिस्प्यूट सेटलमेन्ट या आईएसडीएस (ISDS) द्वारा कर न्याय, स्वास्थ्य, पर्यावरण और सुरक्षा मानकों के मुद्दों पर निवेशकों और राज्य के बीच विवाद का निपटारा : एफटीए समझौतों के इस नये युग में दक्षिण एशिया के देश आईएसडीएस की व्यवस्था मानने पर विवश होंगे। इस व्यवस्था में निवेश के नियमों में किसी भी तरह के बदलाव से निवेशकों के अधिकारों की रक्षा की जाती है। आईएसडीएस के अंतर्गत अगर किसी देश के नियम-क़ानून निवेशक के अधिकतम मुनाफ़ा कमाने में बाधक बनते हैं तो निवेशक उस देश की सरकार के ख़िलाफ़ मुकदमा कर सकता है। यह प्रावधान दक्षिण एशिया के उन देशों के लिए बहुत ही तकलीफ़देह है जो ज़मीन के स्वामित्व के मामले में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ.डी.आई.) की अनुमति देते हैं। जैसे श्रीलंका के मामले में हुआ था कि वहाँ विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनियों के सामने से ज़मीनें ख़रीदने की सभी बाधाएँ हटा दी गईं। श्रीलंका और चीन के बीच एक एफटीए समझौते की वार्ताएँ जारी हैं। अगर श्रीलंका कृषि भूमि में निवेश के लिए आईएसडीएस की व्यवस्था स्वीकार कर लेता है तो उसके लिए विनाशकारी साबित हो सकता है।

अधिकांश दक्षिण एशियाई देशों ने द्विपक्षीय निवेश समझौतों (बाईलेटरल इनवेस्टमेंट ट्रीटी या बी.आई.टी.) पर हस्ताक्षर किये हैं और उन्हें अपने ख़िलाफ़ आईसडीएस के अंतर्गत मुकदमों का सामना भी करना पड़ा है। ऐसे बहुत से मामले हैं जहाँ कंपनियों ने बीआईटी और अन्य व्यापारिक समझौतों में मौजूद 'निवेशकों की सुरक्षा' के प्रावधान का इस्तेमाल कर दक्षिण एशिया के देशों पर क़ानूनी कार्रवाई की और मोटा मुआवजा वसूल किया है।

मुक्त व्यापार और किसानों का विरोध

पिछले कुछ महीनों से हम दुनिया-भर में किसानों के व्यापक विरोध प्रदर्शनों का उभार देख रहे हैं। दक्षिण एशिया में भी किसानों का ग़ुस्सा जगह-जगह विरोध प्रदर्शनों में फूटा पड़ रहा है। दक्षिण एशिया के किसानों के ग़ुस्से की एक सामान्य वजह एफटीए समझौतों के प्रति उनका ग़ुस्सा है, क्योंकि इनकी वजह से अनेक इलाक़ों में खेती-किसानी पर तबाही बरपा हो रही है। योरप के किसानों की भी यह शिकायत है कि खाद्य उत्पादन की उनकी तमाम कोशिशों के बावजूद उन्हें बमुश्किल ही कुछ कमाई हो पाती है क्योंकि एफटीए और विनियमन के कारण उन्हें अनेक क़िस्म की अव्यावहारिक और नुक़सानदेह पाबंदियाँ झेलनी पड़ती हैं और उनकी वस्तुओं की जो उत्पादन लागत आती है, उससे कम क़ीमत में उन्हें उसे बेचना होता है। योरपीय यूनियन की एफटीए समझौतों के प्रति जो आसक्ति और उत्साह है, उसने दुनिया भर के किसानों को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ ला खड़ा कर दिया है। वे बिल्कुल तला छूती कम क़ीमतों (bottom prices) में अपने उत्पाद बेचकर एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं जिससे उनकी आमदनी की सुरक्षा भी ख़तरे में पड़ गई है।

हाल के कुछ बीते वर्षों में दक्षिण एशिया दुनिया के बड़े किसान आंदोलनों का गवाह रहा है। इनमें भारत, पाकिस्तान, नेपाल और श्रीलंका शामिल हैं। वर्ष 2024 की शुरुआत में भारत के किसानों ने अपना आंदोलन फिर से शुरू किया। किसान फिर दिल्ली की ओर कूच कर गए क्योंकि वे सरकार के न्यूनतम समर्थन मूल्य और अन्य वादे पूरे नहीं किये जाने से नाराज़ थे। इसके साथ ही वे भारत सरकार से विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) से बाहर आने और सभी एफटीए समझौते निरस्त करने की भी माँग कर रहे थे। भारत के किसान इस बात पर भी बहुत ज़ोर दे रहे हैं कि किसी भी एफटीए समझौते को स्वीकृत (रेटिफ़ाई) करने के पहले हर समझौते पर संसद के दोनों सदनों में बहुत विस्तार से चर्चा हो, बहस हो, और उसके बाद आम सहमति से समझौते स्वीकृत या अस्वीकृत करने का फ़ैसला लिया जाए। एफटीए समझौतों के कारण आयात शुल्क में कमी या शून्य ही कर देने के कारण सस्ते आयातों से घरेलू बाज़ार भर जाता है जिसका बुरा असर स्थानीय किसानों पर पड़ता है और उन्हें अपने कृषि उत्पाद का सही दाम नहीं मिल पाता। भारतीय किसानों ने इसके लिए क़ानूनी प्रावधान की माँग की है कि उनके कृषि उत्पादों को बाज़ार और सही दाम हासिल हो।

एफटीए समझौतों के ख़िलाफ़ दक्षिण एशियाई देशों में एक साझा और संयुक्त लड़ाई का जज़्बा अभी बुलंद है। ऐसा ही 2018-19 के दौरान रीजनल काम्प्रीहेन्सिव इकनॉमिक पार्टनरशिप (आरसीईपी) के वक़्त हुआ था। आरसीईपी के ख़िलाफ़ देश भर में व्यापक जनप्रतिरोध हुआ जिसकी वजह से सरकार को अपने क़दम वापस लेने पड़े। लोगों की इस जीत की वजह यह थी कि आरसीईपी व्यापार संधि के भीषण असर जिन तबक़ों पर पड़ने वाले थे, उन तबक़ों के लोगों ने आसन्न ख़तरों को समझा और एकजुट समझदारी से कारगर विरोध किया। उन्होंने दूसरे आरसीईपी सदस्य देशों से आने वाले सामानों पर आयात शुल्क आदि न लगने की वजह से जो सामान धड़ल्ले से उदार आयात

नीति के ज़रिये देश के बाज़ार में भरते जा रहे थे, उन्हें रोक दिया। आरसीईपी के ख़तरों की समझ लगभग सभी क्षेत्रों में काम करने वाले मेहनतकश लोगों को भी हुई। श्रम संगठनों, कारखाना मज़दूरों, किसानों, अन्य सामाजिक आंदोलनों आदि सबने साथ मिलकर यह लड़ाई लड़ी और यह साबित किया कि व्यापार के नियमों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी भी जा सकती है और जीती भी जा सकती है। इसी तरह की एक और पहल अभी नेपाल में शुरू हुई है जहाँ नागरिक समाज के समूह और किसान संगठन मिलकर दक्षिण एशिया में एफटीए समझौतों के फैलाव को रोकने के मक़सद से साथ आये।

दक्षिण एशिया के सभी देशों के किसानों के लिए यह तथ्य समान है कि कृषि क्षेत्र को और अधिक खोलने के लिए ज़रा भी ज़ोर लगाया गया तो किसानों की तकलीफ़ें अनेक गुना बढ़ जाएँगी और पूरे इलाक़े में पहले से ही जारी आर्थिक संकट और गहरा जाएगा और किसान और खेती से जुड़े लोगों का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाएगा। यह सुनिश्चित करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र के करोड़ों किसानों के लिए कृषि एक सम्मानजनक आमदनी देने वाली आजीविका का साधन बनी रहे, क्षेत्र में खाद्य उत्पादन भी टिकाऊ तरह से होता रहे, और खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य संप्रभुता मज़बूत हो।

हिंदी अनुवाद – विनीत तिवारी

★★★★★

ग्रेन एक अंतरराष्ट्रीय अलाभकारी संगठन है जो छोटे किसानों और सामाजिक आंदोलनों को जैव विविधता आधारित और समुदाय नियंत्रित भोजन व्यवस्था के लिए उनके संघर्षों में सहयोग करता है। ग्रेन प्रत्येक वर्ष बहुत-सी रिपोर्ट निकालता है जो दिए हुए विषयों पर गहरे स्रोत के दस्तावेज होते हैं और प्रामाणिक पृष्ठभूमि के साथ विषय का विश्लेषण उपलब्ध कराते हैं।

ग्रेन की रिपोर्टों का पूरा संकलन इस वेबसाइट पर प्राप्त किया जा सकता है

http://www.grain.org

★★★★★